तेरा तुझको (त) अर्पण

❑ शिव कुमार गांधी

(राजस्थान पाठ्यपुस्तक मण्डल की कक्षा-3 से कक्षा -8 तक की हिन्दी की पुस्तकों पर टिप्पणीयां। कक्षा 6,7 की पुस्तकें 2003, कक्षा 4 की पुस्तक 2004 तथा कक्षा 3,5,8 की पुस्तकें 2005 के संस्करण हैं।)

ये पुस्तकें नॉस्टेलजिया नहीं खीझ पैदा करती हैं, खोए हुए बिताए बचपन की....

1

पुस्तक ऊबा कर सुला दी गई एक कब्र है जिसके पन्ने नहीं पलटे जा सकते। पुस्तक एक ही है पर उसका चित्र ऐसे बना है कि वो पास-पास दो कब्रें लगती हैं, तिस पर एक स्टाइलिश दीपक के जलने का आभास है, थोड़ी देर में दीपक के जलने, प्रज्ज्वलित होने का आभास स्थिरता में तब्दील हो जाता है, स्थिर जड़ता। स्थिर जड़, प्रज्ज्वलता - सिर्फ काला और सफेद। फिर इस दीपक के तीनों तरफ किसी स्टंट हीरो की मानिंद आच्छादित है मोड खाते अक्षरों-शब्दों में लिखा हुआ 'राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल' यह है 'रा.रा.पा.पु.मं.' का 'लोगो' जो कि इन पुस्तकों पर छपा है - जिसके इर्द-गिर्द छपे हैं बेहद हष्ट-पुष्ट, साफ-सुथरे स्कूली ड्रेस में लिपटे बच्चे, कुछ झूला झूल रहे हैं, मोरों को देख रहे हैं, सूखे इलाके में बहती नदी की ओर से 'विजय स्तम्भ' की ओर जा रहे हैं, जो कि स्कूल है या घर या शिक्षा का अन्य स्पेस, पता नहीं चलता। पीछे सूरज उग रहा है कि छिप रहा है पता नहीं चलता। भारत के नक्शे (जिसमें दक्षिण से लेकर उत्तर तक पहाड़ ही पहाड़ हैं। गुजरात के कच्छ से लेकर पश्चिम बंगाल तक नारियल के पेड़ हैं और असम से लेकर अफगानिस्तान तक घने छायादार पेड़ हैं व भारत सरकार का शासकीय चिह्न पाकिस्तान के स्थान पर लगा हुआ है।) की ओर सिर उठाकर देखते बच्चे अपने तथाकथित गौरव को पुनर्जीवित करने को तैयार आत्मविश्वासी, 'उठो धरा के अमर सपूतो पुन: नया निर्माण करो' के ढब में।

इस पूरे दृश्यात्मक यथार्थ में जो भावनाएं छिपी हैं वह हमें पुस्तकों के पिछले कवर पर भोथरे अतियथार्थवादी रूपक की तरह दिखती हैं - जिसमें कि गहलोत सरकार के नाममय नारे लिखे हैं (जैसे कि नारे लिखने से ही शिक्षा संभव हो पाती हो) और नारों पर 'प्रात: स्मरणीय महारानी' वसुन्धरा सरकार की पुती स्याही।

यह लिखना और उसके मिटने का दृश्य हमें कई और दृश्यों में ले जाता है जहां यथार्थ पर भ्रम और उस पर 'अंधविश्वास' पुता होता है। अंधविश्वास 'शिक्षा' का, शैक्षणिक गतिविधियों व उसके माध्यम से दुनिया की समझ को पा लेने का।

2

चलिए रा.रा.पा.पु.मं. की कल्पना एक चश्मे के पीछे खड़े, आगे खड़े, पास में खड़े, नीचे सोए, ऊपर बैठे भीमकाय, चलिए कृशकाय, छोड़िए ; सिर्फ काया के रूप में करते हैं। चश्मा तो चश्मा होता है नजर का भी होता है, सुन्दरता के लिए भी होता है। मंडल का चश्मा भांत-भांत के ऐतिहासिक कारणों, भविष्य को सुन्दर सुरक्षित बनाने और महालोकतांत्रिक देश के नागरिकों को अच्छा-सुच्चा-सभ्य बनाने के लिए निर्मित किया गया है/था। कल्पना को अब ब्यौरों और क्रम की यांत्रिकता में नहीं फंसाते, सीधे चश्मे की दृश्यात्मकता पर आते हैं । चश्मे के 'कांचों' से अलग-अलग चीजें/यथार्थ/स्वप्न दिखते हैं। कांचों से क्या तात्पर्य ? यानी इसकी दोनों आंखों के लिए दो नहीं असंख्य कांच हैं और रा.रा.पा.पु.मं. की 'काया' की कायाओं के गुणन से अलग-अलग आकार-प्रकार व रंगों के साथ डंडियां भी हैं। अब इतने कांच इतनी डंडियां होंगी तो डंडियां किसी के कान के ऊपर लगेंगी, किसी के कान के अन्दर, किसी की नाक के ऊपर, किसी के दिल के अन्दर, कोई हाथ में पकड़े खड़ा होगा तो कोई डंडी हवा में होगी और उसके कांच से कायाएं उचक-उचक कर देखेंगी। मेरा पूरा विश्वास है इस दृश्य को अगर बच्चे देखेंगे तो भरपूर हंसेंगे। सिर्फ हंसेंगे, बिना प्रश्न उत्तर की चिंता किए। मंडल तो ये भी पूछ सकता है कि बताओ कारगिल का दृश्य देखने के लिए कौनसे रंग के कांच की जरूरत होगी ? अन्यथा चश्मे के वैविध्य पर पांच पंक्तियां शुद्ध मात्राओं के साथ लिखो.. अन्यथा मां-बाप के साथ राष्ट्रीय राजमार्ग पर काम करने जाओ।

अब इस चश्मे की फितरत ही ऐसी है कि गांव देखना हो तो अलग कांच, शहर देखना हो तो अलग रंग का कांच, विकास को परिभाषित करना हो तो अलग, पर्यावरण अलग दिखेगा, इतिहास दूर तक एक ही रंग का दिखेगा और भविष्य सुदृढ़ अखण्ड 'एकता में अनेकता - अनेकताओं की एकता' के रोचक रूपक के अतिरूप में किसी टी.वी. सीरीयल में दिखेगा।

बहरहाल एक उदाहरण देखते हैं, 'राजस्थान में तो दोहरी मार थी यहां राजाओं और जागीरदारों के जुल्मों से भी जनता पिस रही थी' (पाठ-20, क्रांतिवीर प्रताप सिंह बारहठ, कक्षा-6) इस उद्धरण को हम 'क्रांतिवीर' के नायक बनने की भूमिका के रूप में अगर समझें भी तो मंडल अपने चश्मे से ही इतिहास का पाठ करता और पाठ के प्रश्न-उत्तर बनाता व नम्बर बांटता दिखेगा। कैसे ?

चूंकि इतिहास एक सरल रैखिक घटनाओं में ही दिख रहा है तो 'जुल्मों से भी जनता पिस रही थी' वाली जनता पाठ का हिस्सा नहीं बनेगी। क्योंकि अलग-अलग समय में समुदायों के जीवन, उनके रहन-सहन, खान-पान, भाषा, कलाओं, खेलों उनके वैविध्य को हम अतीत को समझने के स्रोत में रूप में रुचि दिखाने की बनिस्पत शासकों के 'वीरगति' प्राप्ति व तलवारों के संरक्षण में ज्यादा गौरव महसूसते हैं। इन पुस्तकों में इतिहास का क्रम पौराणिक राजाओं की उपदेशपरक ठस कथाओं व राजपूत शासकों के गुणगान से प्रारंभ होकर 'आध्यात्मिक' उपासना के नव तीर्थ कारगिल पर आकर देश व देश में व्यक्ति की अवधारणाओं को परिभाषित करता है।

3

यह जाहिर-सी बात है कि स्टेट का 'स्टेट ऑफ माइंड' अपनी ही जटिल संरचना में कुछ नियत एजेंडे, नियत पैटर्न तय करता है जो कि राजनीतिक पार्टियों की अपनी बोदी शैक्षिक विचारशीलता के साथ थोड़े बहुत बदलते रहते हैं। कहना न होगा कि एक आवरण होता है लोकतांत्रिक व लोक कल्याणकारी मूल्य बोध का जिसकी दिलचस्पी मात्र 'टारगेट' में होती है और यह वह टारगेट ही है जो स्कूल की चारदीवारी में राष्ट्र का नव-निर्माण राष्ट्र के अनुसार करता है।

प्रश्न यह है कि इस पूरे क्रिया-कलाप में लोकतांत्रिक क्या है ? क्या बच्चों या उनके अभिभावकों द्वारा शालाओं का चुनाव ? शालाओं में पुस्तकों- गतिविधियों (अगर वे होती हों तो) का चुनाव ? मुझे लगता है कि इस प्रश्न का गहरे में इस बात से संबंध है कि क्या हम अपने लिए स्वतंत्र रूप से सम्मानजनक

परिस्थितियों के साथ अपने जीवन का चुनाव कर सकते हैं ? अगर नहीं कर सकते, तो हमारे बच्चों को कौनसा इतिहास पढ़ना है, किस विचार का साहित्य पढ़ना है, किस विकास मॉडल में यकीन करना है या नहीं, को भी नहीं तय कर सकते। हमें स्टेट के विकास मॉडल और उसकी दुनिया के प्रति समझ के आधार पर ही सारी दुनिया का 'ककहरा' सीखना ही नहीं अपनाना होगा। इसी रोशनी में मैं तथाकथित लोकतांत्रिकता का पाठ पढ़ाने वाली इन पुस्तकों को देखता हूं।

क्योंकि 'मेन स्ट्रीम' को स्टेट जिस रूप में परिभाषित करता है उस परिभाषा और उसके मॉडल में वही लोग आते हैं जो इस मॉडल की प्रारंभिक परीक्षा के प्रश्नों के समुचित हल संभव कर 'आगे' बढ़ जाएं। आगे कहां प्रतियोगिताओं में, डॉक्टर, इंजीनियर, आईटी, कारखानों, ऑफिसों, बैंकों, मल्टीनेशनल्स आदि तमाम विकास की जगमगाती ख्वाब/कब्रगाहों में ....हामिद का क्या होगा इस ग्लोबल..., आधे-अधूरे ग्लोबल, आधे-अधूरे शहर - गांवों, आधी-अधूरी आधुनिकता में ? होगा क्या हामिद की ही उम्र के अन्य बच्चे का द्वन्द्व और जटिल होगा, चिमटा खरीदूं कि अन्य असंख्य चीजें। और 'हामिद' रहित 'मेन स्ट्रीम' का कण्टेंट इन पुस्तकों में यत्र तत्र दिखाई पड़ता है ... सांस्कृतिक-ऐतिहासिक गौरव, अनुशासन, विकास, नीति, चरित्र, देशभक्ति, स्वास्थ्य, पर्यटन... दरअसल यह राष्ट्रीयता नाम के बड़े डिब्बे के छोटे-छोटे खाने हैं।

गांवों के स्कूलों में खेतिहरों के बच्चे पुस्तक के पाठों, उनके चित्रों, सवालों, उपदेशों को देखते-पढ़ते रहते होंगे तो अपनी कैसी छवि बनाते होंगे ? अनेक संत्रासों के बीच स्वयं को अच्छे कपड़ों में भरे पेट, पुस्तकों के चंद सवालों को हल करके शहरों की ओर जाते हुए से। जबकि उनके माता-पिता शहरों में मजदूरी करके सांझ ढले थके कदमों से घर लौटते हुए ...

4

पुस्तकें माध्यम नहीं लक्ष्य हैं। वे अपने आप में स्वतंत्र इकाई नहीं हैं, उसे शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण पद्धति, स्कूल, शिक्षक के साथ एकीकृत करके देखने पर पूरी संरचना व तमाम उपक्रम सामने आते हैं, चूंकि यह संरचनागत बाध्यता है स्कूली चारदीवारी की, शिक्षा पद्धति के फॉर्म की। क्योंकि शिक्षा पद्धति पुस्तक केन्द्रित है। यही शिक्षा पद्धति की संरचना पुस्तक की संरचना में तब्दील होती दिखती है। अगर हम पुस्तक को स्कूल की चारदीवारी से मुक्त करके स्वतंत्र इकाई के रूप में सोचते हैं तो शिक्षा पद्धति की संरचना पर प्रश्न उठना लाजमी है। समस्या यहीं है। इन पुस्तकों का उद्देश्य 'जन सम्मत एवं जीवनोपयोगी शिक्षाक्रम के आधार पर ... ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ भावी पीढ़ी को परस्पर सहयोग की भावना से कार्य करने के लिए सक्षम बनाना है, जिससे समाज में शांति का वातावरण रहे एवं देश खुशहाल बन सके'। यह उद्देश्य ही पुस्तकों को माध्यम नहीं लक्ष्य में तब्दील करता है। पुस्तक की ऐसी संरचना बनाता है जिसमें ज्ञान एक खुली हुई मानसिक एवं करके देखने की क्रिया-अनुभव-संवाद नहीं बल्कि एक 'फॉर्म' भर है जिसे परीक्षा के प्रश्नों को हल करके डिग्रियों के रूप में तथा बाद में बाजार की नौकरियां करके पाया जा सकता है।

यही कारण है कि इन पुस्तकों में विचार करना सीखने की संभावनाएं न्यूनतम हैं, न यहां प्रश्न करना सीखने की गुंजाइश है, न व्यक्ति की स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए लोकतांत्रिकता की, आलोचनात्मक समझ का तो सवाल ही नहीं उठता। यहां पाठ ऑब्जेक्ट हैं जो शिक्षक के माध्यम से बच्चों के दिमाग में 'है तो है' के ढब में भरे जाते हैं।

5

'ऐसा पूर्ण प्रयास किया गया है कि बालकों में देशप्रेम, सर्वधर्म-समभाव, प्रकृति प्रेम, राष्ट्रीय व सामाजिक-चेतना, संवेदन- शीलता, महिला सशक्तिकरण, महिलाओं व बुजुर्गों के प्रति सम्मान, समता, समानता, भाईचारा, धार्मिक सहिष्णुता, पर्यावरण संरक्षण जैसे ज्वलंत मुद्दों के प्रति जागृति, चिंतन व स्वविवेक से कर्तव्य चयन के कौशलों का विकास हो सके। आप शिक्षण के समय राष्ट्रीय सरोकारों को अद्यतन बनाते हुए प्रस्तुत करें।' (कक्षा 8, अध्यापकों के लिए, द्वारा निदेशक, रा.रा.शै.अ.प्र.सं., उदयपुर)

'पाठ्यपुस्तक में आए हुए परिवेश, अभियान, प्रेरक प्रसंग, संस्कृति और भारतीय गौरव के पाठों को पढ़कर निश्चित ही

शिक्षार्थियों के मन में भावनात्मक एकता, प्रकृति-प्रेम, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना, संवेदनशीलता, सहकारिता, महिला सशक्तिकरण, जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा, भारतीय संस्कृति के बदलते आयाम के प्रति सोच विकसित होगी। साथ ही स्वचिन्तन, मौलिकता एवं निष्कर्ष निकालने की क्षमता भी विकसित हो सकेगी।' (कक्षा 6, अध्यापकों के लिए, द्वारा - वही)

पुस्तकों के प्रारंभ में अध्यापकों को दिए यह निर्देश पुस्तक में संकलित साहित्य की भूमिका बनाते हैं। पूर्व नियोजित है कि साहित्य के पाठों को किस निष्कर्ष पर पहुंचाना है चूंकि निष्कर्ष भी पहले से तय है तो साहित्य का चयन भी इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर किया गया है। यहीं से साहित्य उपदेश का फॉर्म बनता चला जाता है और उपदेश बच्चों को जल्दी-जल्दी देशभक्त व चरित्रवान बनाने पर आमादा है। इसलिए इनमें जिज्ञासा, कल्पनाशीलता, संवाद की गुंजाइश नहीं रहती। इस पूरे पुस्तक-स्कूल उपक्रम में जो उम्मीद की पतली गली बनती है वह शिक्षक तक पहुंचती है लेकिन निर्भर करता है शिक्षक संवाद के लिए कितना स्पेस बनाता है वैसे भी यह सब तामझाम इस बात की रोशनी में ही घटित होते हैं कि शिक्षा क्या है ? जैसा कि यह पुस्तकें मानती हैं कि बच्चे हमारे लिए न खत्म होने वाले वे खाली दिमाग हैं जिनको कि हमें सांचों में फिट करना है और अगर शिक्षा को हम दुनिया के बारे में संवाद करना मानते हैं तो पुस्तक का यह बेहद उबाऊ, बेहद यांत्रिक फॉर्म हो ही नहीं सकता।

बच्चा दस साल की उम्र तक आते आते 'देश' शब्द का अर्थ, उसकी प्रारंभिक अवधारणाओं के बारे में जिज्ञासाएं करने की स्थिति में पहुंचता है इससे कई वर्ष पूर्व ही बच्चे का दिमाग यह रट चुका होता है कि मेरा देश महान है। एक सरलीकृत, सपाट, पूर्वग्रह भरा सूचनात्मक 'ज्ञान' जो शायद जीवन में कभी काम नहीं आता, आता भी है तो उन्मादी भीड़ के रूप में।

प्रश्न यह है कि छोटे बच्चों के लिए देश क्या है ? क्या वह जो अपने पांवों चलकर या साईकिल पर चक्कर काटकर नाप लेते हैं, और रास्ते की असंख्य चीजों-जीवन को देखते जिज्ञासाओं, कल्पनाओं से दुनिया की अवधारणा बनाते, चलते-चलते अपनी नई चीजें खोजते रहते हैं या इन सब से काटकर मंडल की पुस्तकों में जो देश देखते हैं ? इसीलिए पुस्तकों में कंचे खेलते, सितौलिया खेलते, लट्टू चलाते, पतंग उड़ाते, तितलियां ढूंढ़ते, मिट्टी खोदते, बारिश में नहाते, दौड़ लगाते, झगड़ा करते, मार-खाते, गाली सुनते आश्चर्य करते, बोर होते, सवाल पर सवाल पूछते, हंसते-रोते, सपने देखते, बादलों से आकृतियां बनाते, पत्तियों से सीटी बनाते, छलांग मारते, चिल्लाते, बकरी चराते, बर्तन धोते, गल्तियों से सीखते बच्चे नहीं हैं। हैं तो 'है मंजिल की हमें कसम, कस ले मुट्ठी बढ़ा कदम' (पाठ-18, कक्षा-3), 'आओ वीरोचित कर्म करो, मानव हो तो कुछ शर्म करो'। (पाठ - 25, कक्षा-8, लेखक - शिव मंगल सिंह 'सुमन') के सैनिक वेश की मुद्रा में।

कहना न होगा कि एक विजीबल जीवन पर इनविजीबल 'ज्ञान' आरोपित होता रहता है।

6

इन पुस्तकों के लेखक जैन, वाजपेयी, तिवारी, गुप्ता, व्यास, जोशी, त्रिवेदी, चौपड़ा, शर्मा, राव, मुद्गल, मूरट ... आदि हैं । ब्राह्मण-बनियों की नजर में कैसी दुनिया इन पुस्तकों में है, इस पर विचार करते हैं। 'सुमंत ने उन मोतियों को बाजार में बेचा उसको अच्छे दाम मिले। कुछ ही दिनों में सुमंत अमीर हो गया । उसकी झोंपड़ी की जगह पक्का मकान बन गया। सभी तरह की सुविधाएं हो गईं... ? (पाठ - 20, जलपरी, कक्षा-3) सुमंत ने सुनहरे रंग की तड़पती मछली को पकड़ कर वापस समुंदर में छोड़ उसको जान बख्शी थी। इसी उपकार के बदले वह मछली 'जलपरी' सुमंत को मोतियों का डिब्बा देती है। परोपकार की कीमत, कीमत रहित परोपकार नहीं होता। कीमत भी अच्छी खासी है मजदूर से सीधा पूंजीपति बना दिया। पाठ की दबी-छिपी हुई आकांक्षा हमें दिखाई देती है। सुमंत को सभी तरह की सुविधाएं प्राप्त हो गईं। सुविधाएं मतलब टी.वी., फ्रिज, कार, कम्प्यूटर, नौकर-चाकर आदि और झोंपड़ी की तब्दीली पक्के मकान में। यह पक्का मकान और सुविधाएं ही आकांक्षा हैं जो शहरी विकास मॉडल को रूपायित

करती हैं और उसके लिए चमत्कार भरी कथा चुनने के रूप में प्रेरित करती हैं। एक वणिक बुद्धि का सर्वोत्तम उदाहरण। सुमंत कंचे खेलने की उम्र में जौहरियों को मोती बेचता फिर रहा है यह खुले बाजार में ही संभव है। खुशहाल देश की महानगरीय संस्कृति का सच्चा-सभ्य नागरिक। समस्या यह है कि हामिद का क्या होगा ? चमत्कार उसकी जिंदगी में हैं नहीं, जेब में तीन ही पैसे हैं और उसे चिमटा चाहिए। परोपकार के लिए नहीं अपनी वास्तविक दादी के लिए।

7

त्याग पर उदाहरण है 'पन्ना का त्याग' (पाठ - 22, कक्षा -4) और 'कालीबाई' (पाठ - 20, कक्षा - 5)। मेन स्ट्रीम को बनाए रखने के लिए दो गरीब वंचित स्त्रियों का त्याग एक राजा के लिए दूसरा शिक्षक के लिए, ठीक वैसे ही जैसे महानगरीय विस्तार के लिए असंख्य ग्रामीणों का 'त्याग'...

कालीबाई पाठ में घटनाक्रम मेलोड्रामेटिक तरह से चलता है। लेखक इस उतावली में ज्यादा है कि किस तरह फटाफट 'सिपाहियों ने कालीबाई को भून दिया' वाला दृश्य आए। घटनाएं जल्दी-जल्दी घटती हैं। जैसे कि घटना का चुनाव पुस्तक के लिए मात्र इसलिए किया गया है 'भील बाला कालीबाई में भी एकलव्य की सी गुरू भक्ति के संस्कार थे। वह भी अपने गुरू की परम भक्त थी' (पाठ से) कि एक गुरू भक्तन के पाठ के माध्यम से 'गुरू-भक्ति' को स्थापित कर बच्चों को गुरू भक्त बनाया जाए, ठोक पीटकर। घटना में जो शिक्षक सेंगाभाई है वह 'बालकों को अंग्रेजों के अत्याचार की कहानियां सुनाते तो कभी सामन्ती शोषण की।' जाहिर है कि इस स्कूल का फॉर्म व कण्टेंट भी भिन्न था परन्तु पाठ के लेखक इतिहास में से मात्र घटना और उसके दो प्रमुख किरदार सेंगाभाई व कालीबाई को आज के समय में बिम्ब के रूप में बनाकर पेश करते हैं कि अपने शिक्षक का सम्मान करो, स्कूल का सम्मान करो, चार दीवारी का सम्मान करो। यह छिपी मंशा ही घटना को घटना और उसके संस्तरण को नहीं रहने देती। एक मैलोड्रामा में तब्दील करती है जिसका क्रम भी गड़बड़ है। भाषा के कुछ उदाहरण देखिए 'कालीबाई उन्हें ध्यान से सुनती। सुनते-सुनते उसका खून खौलने लगता।' 'उसने सामन्त को सारी घटना नमक मिर्च लगा कर कह दी', 'तुम मुझे न्याय सिखा रहे हो ? छोटे मुंह बड़ी बात करते हो ? सिपाहियो ! इसे ट्रक से बांध कर घसीटो (पता नहीं उस समय के ट्रक के बारे में) 'नानाभाई धड़ाम से गिर पड़े और ऐसे गिरे कि फिर कभी उठे ही नहीं' सपाट बयानी व मेलोड्रामा यहीं खत्म नहीं होता। पाठ के प्रश्न देखिए - कालीबाई का खून क्यों खोलने लगा था ? रास्तापाल का जागीरदार क्यों झल्ला उठा ? जिला न्यायाधीश को क्रोध क्यों आया ? नाना भाई घायल होते हुए भी उठकर क्यों दौड़े ?

सपाट बयानी, तुकबन्दियों के उदाहरणों से कविताएं भरी पड़ी हैं। कुछ उदाहरण देखते हैं - किसने सबको पंथ दिखलाया / जो भी आया गले लगाया/शांति सभ्यता का जो प्रहरी/गौरव का परिवेश है/बोलो वह है देश कौनसा/वह तो भारत देश है। (पाठ - 1 कक्षा 5) पर्वत और मैदानों वाला/खेतों और खलिहानों वाला/बाग-बगीचों जंगल वाला/मरूस्थल में भी मंगल वाला/सभी सुखों की खान है/अपना देश महान है। (पाठ-1, कक्षा-3)

अगर जलपरी पूंजीवाद का पहला पाठ है तो ये अंधराष्ट्रवाद के पहले पाठ हैं। और यह देय 'ज्ञान' है, ज्ञान की पुष्टि के लिए सवाल भी है कि, भारत देश को महान क्यों कहा गया है ? या भारत देश अपनी किन-किन विशेषताओं के कारण दुनिया में श्रेष्ठ माना गया है ? पहला सवाल तीसरी का है दूसरा पांचवीं कक्षा का। आठवीं की किताब में दिनकर की कविता पर सवाल है, कविता में वर्णित भारत की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए ? एक सवाल आनंद पोथी कक्षा दूसरी में है, हम भारत की रक्षा कैसे करेंगे ? कक्षा-4 का पहला पाठ है, 'भारत मां का सदन सुहाना/ स्नेह-प्रेम सम्मान यहां/दुख-सुख में है गूंजा करते/ निशि-दिन गौरव गान यहां।' इस कविता पर एक सवाल है, हमारे देश को धरती का स्वर्ग क्यों कहा गया है ?

इन ज्ञान के स्वघोषित, आत्मरति से सराबोर केन्द्रों व इनकी पुस्तकों में कदम-कदम पर ऐसे ज्ञान और मूल्यांकनों से हमारा सामना होता है। देखिए दृश्य कुछ ऐसा है, बच्चे स्कूल में जाते हैं, सिर का 'ढक्कन' खोला जाता है, भारत सरकार की शासकीय रबर मोहर सिर में ठप्प... से लगाई जाती है। उसकी आवाज भी इतनी तेज होती है, बाकी प्रश्न दब जाते हैं और हम रोज-रोज अपना सिर हाथ में पकड़े घर लिए चले आते हैं। 'ज्ञान' विमर्श का यह तरीका इनकी स्कूलों के फ्रेम से बहुत मेल खाता है, यह हम पहले ही कह आए हैं।

8

कक्षा तीन की पुस्तक के पेज सैंतीस पर एक चित्र बना है जिसमें सत्ताईस व्यक्ति पंक्तियां बनाकर कहीं जा रहे हैं या कहीं से आ रहे हैं। दिखने में यह सैनिकों जैसे लग रहे हैं। सबकी एक जैसी मूंछें हैं, उन्नत और उन्मत, शिखरोन्मुखी। ये सैनिक अपनी वर्दी और ऊपर पहाड़ पर एक सैनिक अनजानी दिशा (शायद पाकिस्तान) की तरफ बंदूक चला रहा है, के चित्र की वजह से भी लग रहे हैं। चित्र

के पास ही कविता की पंक्तियों में 'अगर राष्ट्र पर संकट आए अपना सब न्यौछावर कर दें, राष्ट्र रहेगा, तब हम होंगे, यह विचार हर मन में भर दें', लिखा है। अब इस दृश्य का अनुवाद कुछ दूसरे दृश्यों में करते हैं। पहाड़ी पर जो व्यक्ति बैठा है वह शिक्षक है और पंक्तियों में बच्चे, जो एक जैसे वर्दी और चेहरों से रबर जैसे दिख हैं, जैसे कि मास्टर जी ने सांचों में रबर ठूंस कर अभी-अभी तैयार किया है। जो कि पाठ पढ़ने, लाईन बनाकर स्कूल आते हैं, वापस घर जाते हैं, फिर वापस आते हैं, फिर वापस जाते हैं - कुछ काम करो, कुछ काम करो/जग में रह कर कुछ नाम करो/यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो/समझो, जिसमें यह व्यर्थ न हो/कुछ तो उपयुक्त करो तन को/नर हो, न निराश करो मन को (पाठ -4, कक्षा-7, लेखक-राष्ट्र कवि) की मुद्रा में।

यह बच्चे चलते-चलते पेज सैंतीस से निकल कर कहीं और निकल पड़ते हैं। कहीं इंजीनियर दिख रहे हैं, कहीं दुकानदार, कहीं खरीददार, कहीं विज्ञापन हैं तो कहीं क्लर्क और पहाड़ी पर बैठा शिक्षक कहीं जज है, कहीं राजनेता तो कहीं पूंजीपति। बिल्कुल एक जैसे, बिल्कुल एक तरह के, ठीक यांत्रिक जड़ता में अपनी कूढ़मगज पुस्तकों व कूपमंडूक शालाओं जैसे।

9

सुना है कि यह पुस्तकें जालंधर, आगरा, दिल्ली आदि में मुद्रित होती हैं, मण्डल टेण्डर निकालता है .... पाठ मुनाफे की रीति बन जाता है, प्रेमचन्द का हामिद कमीशन के गणित में फंस जाता है, उसके बचपन में पढ़े गणित के पाठ यहां मुनाफे के लालच में छोंक लगाते हैं। दिल्ली से ट्रक में इन किताबों को ढोकर लाने वाला ड्राइवर अपने बच्चों के लिए सुनहरे सपनों के बारे में सोचता होगा .....

पाठ्यपुस्तक मण्डल का अधिकारी मुद्रक के यहां काम देखने गया हुआ आगरा में ताज के आगे खड़ा जीवन की निस्सारता के बारे में सोचता हुआ कहता होगा, 'यह जीवन यूं ही चलता है। सब आना-जाना है, सब ईश्वर करता है। बच्चों को इतनी सस्ती पुस्तकें पढ़ने को मिल रही हैं यही क्या कम है ? सरकार इससे ज्यादा कर भी क्या सकती है ? नहीं तो कमबख्तों को बकरियां चराने के अलावा आता ही क्या है ?' इसके बाद पुस्तकों पर छपी भारत सरकार की 'सत्यमेव जयते' के साथ शेरों वाली रबड़ मोहर दृश्य में छप जाती होगी, घूमती होगी आसमान में दहाड़ती हुई।

10

अंत में प्रार्थना... जब 'शीतल पेय', मंजन, चड्डी-बनियान, टी.वी., अखबार, चीख-चीख कर पुरस्कार प्रतियोगिताएं करते हैं तो रा.रा.पा.पु.मं. क्यों पीछे रहे। इसने 'समस्त शिक्षकों, अभिभावकों, जन साधारण तथा विद्यार्थियों' से अनुरोध किया है कि सभी पुस्तकों के बारे में सुझाव भेजें। उन्हें पुरस्कृत किया जाएगा। चूंकि मैंने कोई सुझाव तो नहीं दिया है, तो मैं 'पुरस्कार' से वंचित ही हूं। अगर आपको बचपन में पढ़ी इन किताबों की ऊब, झल्लाहट, करुणा उपजती है तो आप आमन्त्रित हैं। यह पुरस्कार का मामला है बाकि चीजें मत सोचिए और दौड़िए।

हामिद कहीं चिमटा खरीदने के लिए जेब के तीन पैसे को बार-बार न पकड़े और मोल-भाव न करे। पुरस्कार की जुगत करे। संभव है ज्यादा पैसे जेब में होंगे तो दादी के लिए चिमटा छोड़ पेप्सी और पिज्जा ले जाएगा। अब आप इसे देश की खुशहाली का द्योतक न माने तो क्या विकल्प तलाश करें ? ◆